गेहूँ के सूत्रकृमि रोग एवं प्रबन्धन | कृषि कुंभ (अगस्त, 2023), खण्ड 03 भाग 03, पृष्ठ संख्या 72–75

गेहूँ के सूत्रकृमि रोग एवं प्रबन्धन

डॉ. रमेश चन्द[1], डॉ. धीरेन्द्र प्रताप सिंह[1], डॉ. अर्चना यू सिंह[2], डॉ. सुभाष चन्द्र[1] एंव डॉ. श्याम बाबू गौतम[1]

[1]पादप रोग विज्ञान विभाग

[1]आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एंव प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय कुमारगंज अयोध्या–224229

[2]सूत्रकृमि संभाग, भारतीय कृषि शोध संस्थान (पूसा), नई दिल्ली–11013, भारत।

Email Id: kardam.nd@rediffmail.com

अ. सेहूंरोग

यह गेहूँ रोग, ममनी ईयर काकल व धानक रोग आदि नामों से देश के अलग हिस्सो मे जाना है। यह गेंहू की बालियों को ही प्रभावित करता है, लेकिन रोग के लक्षण बालियों के साथ–साथ पत्तियों, तना व दानों पर भी दिखाई देते हैं। यह रोग ऐंगिवना ट्रीटीसाई नामक सूत्रकृमि से होता है।

रोग का फेलावः

इस रोग का फैलाव उन सभी क्षेत्रों में पाया जाता हैं जहां गेंहू की खेती नियमित रूप से की जाती हैं। विश्व स्तर पर यह रोग भारत,अमेरिका, पाकिस्तान,श्रीलंका, अफगानिस्तान, बांग्लादेश, रूस व चीन आदि देशों में प्रमुखता से पाया जाता है। भारत में यह रोग उत्त भारतीय राज्यों जैसे उत्त–प्रदेश, राजस्थान,हरियाणा, मध्य–प्रदेश, बिहार, उडीसा व गुजरात आदि राज्यों में प्रमुख रूप से पाया जाता है। यह रोग पिछडे राज्यों जैसे बिहार, उत्त–प्रदेश, पश्चिम बंगाल तथा मध्य–प्रदेश आदि प्रदेशों में सबसे ज्यादा फसलों का प्रभावित करता है। उत्तर–प्रदेश में इसका प्रकोप सभी जिलो में फसलो को प्रभावित करता है।

पोषक फसलेंः

सूत्रकृमि से फैलने वाला (ऐगविना ट्रीटीसाई) यह रोग गेहूं, जौ तथा जई की फसल को ही रोगग्रसित करता है। इन फसलों के अलावा सभी प्रकार की फसलें इस रोग से प्रभावति नहीं होती हैं, जौ व जई में से यह रोग सर्वाधिक गेहूं की फसल को प्रभावित करता है। जबकि जौ व जई की फसलें इस रोग से बहुत ही मामूली रूप से प्रभावित होती है। लेकिन गेहूं फसल की अनुपलब्धता की स्थिति में यह सूत्रकृमि जई की फसल को पोषक फसल के रूप में प्रयोग कर अपनी जनसंख्या लगाातार बढाता रहता है।

रोग के लक्षणः

- प्रारम्भ में रोग ग्रसित पौधे भूमि की सतह पर ही वृद्धि करते हैं। उसके पश्चात ऊपर की तरफ वृद्धि करते हैं।
- पौधे के आधार भाग पर 20–25 दिनों बाद सूजन दिखाई देने लगती है।
- पत्तियॉ संकुचित हो जाती हैं तथा ऐंठकर मुडना प्रारम्भ कर देती है। ये लक्षण रोग की प्रारम्भिक अवस्था को दर्शाता है।
- रोग ग्रसित पौधे अपेक्षाकृत लम्बाई में छोटे रह जाते हैं। और प्रभावित खेतों में छोटे–छोटे भू–भाग में इसका प्रभाव दिखाई देता है।
- रोगग्रसित पौधों से उपजहीन कल्ले निकलने लगते हैं।
- रोग से प्रभावित पौधे छोटी,चौडी या तूड रहित बालियां पैदा करते हैं।
- रोगी पौधे अधिक दिनो तक हरी अवस्था में बने रहते हैं।

- पौधे में दानों के स्थान पर ममनी बनना प्रारम्भ हो जाती है।

रोग से हानिः

ज्यादा प्रभावित क्षेत्रों में 80 प्रतिशत तक फसल में हानि होना साधारण बात है। पूरे भारत वर्ष में इस रोग से औसतन 1–2 प्रतिशत उपज का नुकसान का अनुमाान होता है। लेकिन बिहार तथा उत्त–प्रदेश जैसे राज्यों में जहां बीज बदलने की दर धीमी है, इस रोग से 5–10 प्रतिशत तक हानि सम्भव है।

रोग की उत्पत्तिः

रोग ग्रसित पौधे की बालियां में बनने वाली काली व भूरे रंग की ममनियों से फैलता है। इनमें द्वितीय अवस्था के सूत्रकृमि डिम्बक भरे रहते हैं। द्वितीय अवस्था में डिम्भकों की संख्या प्रति ममनी 3000 से 12000 तथा औसतन 6000 प्रति ममनी तक हो सकती है। ममनी में द्वितीय अवस्था के डिम्भक 32 वर्षों तक जिवित अवस्था में रह सकते हैं। अनुकूल जैसे तामक्रम 15 डिग्री,बीज की गहरई 2 सेमी,मृदा आर्द्रता 20 प्रतिशत और मृदा वातरन्ध्र 51 प्रतिशत मिलने पर गेंगले फटने लगते हैं, जिससे द्वितीय अवस्था के डिम्बक निकलकर पोषक फसलो पर आक्रमण करते हैं। कटाई व मडाई के समय ममनीयॉ जमीन पर गिर जाती है या फिर स्वस्थ दानों मे मिश्रित हो जाती है। यदि इन दानें को बीज के तौर पर अगले वर्ष प्रयोग किया जाय या फिर इन संक्रमितम दानें को बीज के रूप में बोया जाय तो ममनी या गेगले मिट्टी से नमी प्राप्त कर मुलायम हो जाते हैं तथा फटने लगते हैं । इनमें से द्वितीय अवस्था के डिम्बक निकलकर नवोद्भिद जड के वृद्धि करने वाले भाग को खाने लगते हैं। या शुरू में ही पत्तियों के ऊतकों में प्रवेश कर फूलों तक पहुंच जाते हैं। गेहूं रोग का होना या आना अपने आप में पिछडी कृषि द्योतक है और इससे जाहिर होता है कि बीज को कई वर्षों से बदना नहीं गया है।

रोग से बचाव व नियंत्रण के उपायः

- बीज जो किसी प्रमाणित बीज विक्रेता से क्रय किया गया हो, को ही बोने के लिए उपयोग करना चाहिए
- अगर किसान भाइयों को प्रमाणित बीज नहीं उपलब्ध हो रहा है तो अपने बीज को ही उपचारित करने के उपरान्त प्रयोग करें ।
- किसान भई किसी भी दशा में सूत्रकृमि से संक्रमित बीज को न बोयें।
- खेत में बीमारी के लक्षण दिखाई देते ही रोग ग्रसित पौधे को जड सहित उखाडकर जला दें ।
- बिमारी का प्रकोप होने के बाद खते में किसी भी प्रकार की दवा को इस्तेमाल न करें, क्योंकि ऐसा करने से कोई लाभ नहीं होगा ।
- फसल की मडाई करते समय ओसाई या छलनी के द्वारा ममनियों को अलग कर देना चाहिए ।

बीज को उपचारित करने की विधिः

अधिक संक्रमित बीजों को 10 प्रतिशत नमक के घोल से उपचारित करके बोयें। इसके लिए बाल्टी में 10 लीटर पानी लेकर उसमें 1000 ग्राम साधारण नम घोल लें। फिर उसमें ममनी युक्त बीज डालें। उस घोल को लकडी की सरिया के टुकडे से हिलायें, हिलाने के उपरान्त ममनी, घोल की ऊपरी सतल पर तैरने लगेंगी। इन ममनियों को किसी छलनी से अलग कर घोल से बाहर निकाल लें और उन्हें जला दें। घोल में डुबे हुए बीजो को एकत्रित कर लें व साफ बहते हुए पानी से कई बार धो लें, जिससे सारा नमक बीज से बाहर निकल जाय । तदोपरान्त बीज को छाया में सुखा लें और बुवाई के लिए उपयोग करें।

ब. टुण्डू रोग

ऐंग्विना ट्रीटीसाई नामक सूत्रकृमि व *क्लेवीवेक्टर ट्रीटीसाई* नामक जीवाणु के संयुक्त संक्रमण से गेंहूं की फसल में टुंन्डू या यलो स्लाइम बीमारी का प्रकोप हो जाता है। इस रोग को देश के विभिन्न भागों में गेंहूं का

पीला सडन, गलन या तनन आदि नामों से भी जाना जाता है। इस रोग के पैदा होने के लिए सूत्रकृमि व जीवाणु (*क्लेवीवेक्टर ट्रीटीसाई*) दानो का होना अनिवार्य है। टुण्डु रोग प्रायः तभी होता है जब वातावरण का तापमान औसतन 25 डिग्री सेल्सियस तथा आद्रता 95 प्रतिशत से अधिक लगातार 70 घण्टे से भी अधिक समय तक बनी रहती है।

रोग से होने वाली हानिः

गेंहूँ के टंन्डू रोग से गेंहूं की फसल में होने वाला नुकसान रोग की तीव्रता पर निर्भर करता है। मौसम का मिजाज रोग के अनुकूल होने पर रोग की तीव्रता अधिकतम तक पहुचँ जाती है तथा 80–90 प्रतशित तक गेहूं की उपज का नुकसान हो जाता है। जबकि औसतन नुकसान, लगभग 10 प्रतिशत तक रहता है इस रोग के प्रभाव से फसल में पत्तियों का मुडना, सिकुडना, तने के आधाार भाग का फूलना, किल्लो की संख्या कम होना, बालियों का टेडा–मेडा व कौथ में दबे रहना आदि लक्षण प्रमुखता से दिखाई देते हैं।

रोग के लक्षणः

- रोग की प्रारम्भिक अवस्था में लक्षण ईयर– कॉकल बीमारी जैसे ही प्रतीत होते हैं।
- वातावरण का तापमान कम होने व आपेक्षित आर्द्रता बढ जाने के कारण जीवाणुओं की संख्या में तेजी से वृद्धि होने लगती है।
- जीवाणुओं की संख्या बढ जाने पर पौधों की पत्तियों पर पीले रंग का चिपचिपा गोंद जैसा पदार्थ बनना प्रारम्भ हो जाता है।
- पीला चिपचिपा पदार्थ सूखकर कत्थई रंग के कठोर व मंगुर पदार्थ में बदल जाता है जो बाद में काले रंग के पदार्थ में बदल जाता है।
- रोग ग्रसित बालियों के डंठलों का मरना प्रारम्भ हो जाता है।
- बालियॉ छोटी, सरकारी तथा कुछ दाने या पूरे दाने जीवाणु निवेशित द्रव्य में बदल जाते हैं। रोग की तीक्ष्ण दशा में बालियां कोथ की पत्ती से नहीं निकल पाती है।
- डंठल विकृति हो जाते हैं।
- बलियों में पुष्प अंगों के न होने से दाने बिल्कुल नहीं बनते हैं या फिर सिकुडी अवस्था के दाने बनते हैं।

नियंत्रण के उपायः

यह बीमारी उन्हीं जगहों पर आती है जहां पर कई वर्षो तक बीज नहीं बदला जाता है। ऐसी दशा में फसलों में ममनियों की संख्या साल दर साल बढती रहती है। तथा बीमारी बार–बार प्रकट होती रहती है। इसीलिए इस पर अंकुश लगाने के लिए जरूरी है कि

- स्वच्छ बीज या प्रमाणित बीज ही किसान अपने खेत में बोयें ।
- गेहूँ का बीज किसी विश्वसनीय स्रोत से ही खरीदें।
- ममनीयुक्त बीज को नमक के घोल से ईयर काकल रोग की तरह उपचारित करें।
- सभी किसानों को इस बीमारी के प्रति सचेत करना भी अत्यावश्यक है।

द. मोल्या रोग

गेंहू व जौ की फसल में यह रोग *हैटेरोडेरा ऐविनी* सूत्रकृमि द्वारा पैदा किया जाता है। मोल्या रोग से ग्रसित खेत में फसल को देखने से ऐसा प्रतीत होता है। जैसे कि फसल को बन्दरों ने खलिया हो, कहीं पर पौधे छोटे व कहीं पर ज्यादा लम्बाई के पौधे होने से ही इस बीमारी का नाम मोल्या रोग रखा गया है। सर्वप्रथम भारत में इस बीमारी का नाम मोल्या रोग रखा गया है। भारत में इस बीमारी को राजस्थान के सीकर जिले की नीमकाथाना तहसील से वर्ष 1958 में गेहूं व जौ की फसलों पर पहचाना गया । मोल्या रोग को उत्पन्न करने के लिए इस सूत्रकृमि के द्वितीय अवस्था

Krishi Kumbh Online E-Magazine www.KrishiKumbh.com

के डिम्भक पौधों की नवोदित जडों में प्रवेश कर अपना भोजन पौधों से ग्रहण करना प्रारम्भ कर देते हैं फलस्वरूप पौधों की बढवार रूक जाती है। तथा मोल्या रोग के लक्षण दिखाई देते हैं । द्वितीय अवस्था के डिम्भक विभिन्न अवस्थाओं में परिवर्तित होकर प्रौढ मादा के रूप में जडों के बाहर चिपके रहते हैं । इन्हीं प्रौढ मादाओं को सिस्ट कहते हैं, जिसका शुरूआत जनवरी, फरवरी माह सफेद यूरिया के दानों के समान तथा बाद में भूरी व गहरी होकर फसल कटाई के बाद जडों के साथ भूमि में रह जाती है। इन्हीं मादाओं में प्रति मादा 250–450 अण्डे होते हैं, जिससे कई वर्षों तक खेत में रोग उत्पन्न करने के लिए द्वितीय अवस्था के डिम्भक निकलते रहते है।

पोषक फसलें :

यह रोग गेंहूं जौ व जई की फसलों को रोग ग्रसित करता है लेकिन गेंहू व जौ की अपेक्षा जई की फसल में इसका प्रकोप कम पाया जाता है।

रोग से हानीः

मोल्या रोग का गेंहूं व जौ की उपज पर सीधा प्रभाव पडता है। अनुसंधान से ज्ञात हुआ है कि गेंहूं में 60 प्रतिशत तक व जौ में 70 प्रतिशत तक नुकसान हो सकता है राजस्थान में रोग ग्रस्त खेतों में औसतन 5–10 प्रतिशत नुकसान होता है। वैज्ञानिाकों ने इस रोग से भारत में 1973 में 16 करोड में व राजस्थान में 7 करोड रूपयों के नुकसान का अनुमान लगाया था।

रोग का फैलावः

भारत में यह रोग राजस्थान, हरियाणा, पंजाब, उत्त–प्रदेश, बिहार, हिमांचल प्रदेश जम्मूकश्मीर, दिल्ली तथा मध्य प्रदेश आदि प्रदेशों में होता है। उत्तर प्रदेश के मथुरा, आगरा, अलीगढ, फिरोजाबाद, कानपुर आदि पश्चिमी, मध्य व पूर्वी उत्तर प्रदेश के बहुत से जिलों में इस रोग का प्रकोप पाया जाता है।

रोग के लक्षणः

फसल कमजोर पीली व छोटी दिखाई देती है तथा रोग के लक्षण कहीं–कहीं टिकारों के रूप में दिखाई देते हैं, लेकिन दूसरे व तीसरे वर्ष लागातार गेंहूं व जौ की फसल बोने पर रोग पूरे खेत में फैल जाता है तथा नुकसान का प्रतिशत भी अधिकतम हो जाता है। खेत में पौधे टिकारों के रूप मे बौने रहकर पीले पड जाते है तथा फसल में नत्रजन की कमी जैसे लक्षण दिखाई देते इस रोग के लक्षण निम्न है।

- फुटान कम व बालियां छोटी रह जाती हैं।
- बीमार पौधों की जडें कुछ फूली हुई तथा उन पर मिटटी चिपकी हुई रहती है ।
- सूत्रकृमि के प्रवेश के स्थान से अनेक छोटी–छोटी जडें निकल आती हैं। जिनमें फिर सूत्रकृमि प्रवेश कर जाते हैं, इस प्रक्रिया के जारी रहने से जड में गुच्छे बन जाते है।
- बीमार पौधों की जडों में जनवरी फरवरी माह में यूरिया के दानों के समान सफेद सिस्टर मे परिवर्तन हो जाती है। ये मादाएं (सिस्ट) मार्च अप्रैल में भूरी व फिर गहरे भूरे रंग बन जाती हैं।

रोग का उपचारः

मोल्या रोग का सूत्रकृमि केवल जौ गेंहू की फसल पर ही लगता है। अतः फसल चक्र अपनाना लाभदायक होता है। फसल चक्र में गेंहूं की फसलों के स्थान पर गाजर मेथी सरसों चना व सब्जी वाली फसलें उगायीं जा सकती हैं। मई जून माह में जब दिन का तापमान 40–45 डिग्री सेल्सियस हो तो 10–15 दिन के अंतराल पर 2–3 गहरी जुताई करें, जिससे सिस्ट के भूकि के ऊपर आकर तपने से उसमें मौजूद अण्डे व डिम्भक मर जाते हैं। खेत में 25 क्विंटल प्रति हैक्टेअर की दर से अच्छी सडी हुई गोबर या कम्पोस्ट खाद डालें। जौ की मोल्य रोग रोधी किस्म आर.डी 2035 या आर.डी 2052 बोयें।

Krishi Kumbh
Online E-Magazine
www.KrishiKumbh.Com